अनुभव

ज्ञानरंजन

अनुभव

1970 की गर्मियों का प्रारंभ था। गंगा के मैदान में गर्मियों के बारे में सभी जानते हैं। यहाँ पर मौसम का विशेष कुछ तात्पर्य नहीं है सिवाय इसके कि एक लंबे अंतराल के बाद मैं अपने शहर में लौट आया और वह संयोग से लपटवाले दिन थे।

मैं जब पहुँचा तब अप्रैल के बावजूद कोयल बोल रही थी। एक बच्चा धूप से भरी छत पर बेखबर हाथ में डोर लिये दौड़ रहा था। ऊपर पतंग थी। नीम और पीपल के दो छोटे दरख्त आपस में गुँथे हुए लगभग एक सी हालत में थे। नीम के फूलों से नीचे की गच

सजी हुई थी और पीपल के पत्ते इतने मुलायम थे कि उन्हें सीटी बजाने के लिए मोड़ा तक नहीं जा सकता था।

घर में इतनी सख्त खामोशी थी कि लगा मैं किसी आश्रम में पहुँच गया हूँ। इस तरह के आश्रमों में अब केवल असबाब रखा जा सकता है और मुँह हाथ धोने की जगहों का इस्तेमाल। बाहर निकलते ही सवाल उठता था कि इस तरह की स्पंदनहीन जगहें अब क्यों और कैसे बची हुई हैं। इन्हें तो जंगल में होना चाहिए था और वहाँ से भजन, मजीरे तथा करताल की ध्वनि निकलनी चाहिए थी।

मैं बिस्तर पर सुस्ताने लगा। सुस्ताना बहुत मुश्किल था। शहर के बारे में उत्तेजना को दबोचा नहीं जा सकता था। चेहरे और बातें इतनी तेजी के साथ चकरा रही थीं कि हृदय घबड़ाने लगा। बीच-बीच में हवा के झोंके थे और बेजान खटपट लेकिन इतने मात्र से शहर की दशा के बारे में नहीं जाना जा सकता था।

मैं शाम से पहले ही निकला और चल पड़ा। मुझे गणेश के पास जाना था। सतीश के पास भी और देवदास के पास भी। मैंने समझा कि बिना इन लोगों के पास पहुँचे मैं अपने अंतराल का पेट नहीं भर सकूँगा। मैं अपने प्रिय इलाकों और बाजारों से होकर गुजरा और शायद कुछ जल्दी ही उदास हो गया। यह एक दुखद और हैरतभरा अनुभव था कि स्थानों से निकलते हुए लगा कि उन्हें चीरना पड़ रहा है। यह एक ठंडा सुरंग जैसा अनुभव था, जिसमें से किसी गड़बड़ की गंध आई। मैंने सोचा यह सब जल्दी ही ठीक हो जायेगा, मुझे साथियों की जरूरत है। मुझे उनके पास जाना चाहिए और उन्हें आलिंगन में बाँध लेना चाहिए। मेरे सारे शरीर में असंतुलन था।

मैं महात्मा गांधी मार्ग के एक सिरे से चला। वह साफ सुथरी और लंबी सड़क थी। उसके बाहरी चेहरे पर रंग था, नमक था, रोशनी भी हो गयी थी और एक चुस्त दबदबा। ऐसा लगता था कि बड़े शहरों के बहुत से नियम यहाँ भी चालू हो गये हैं। महात्मा गांधी मार्ग पर चलते हुए यह भी लगा कि हमारी जिंदगी की शान इस सड़क से भी कुछ न कुछ चिपकी है। महात्मा गांधी मार्ग कभी मामूली मार्ग नहीं होता, वह हर कहीं शहर का एक ऊँचा और चमकीला मार्ग होता है।

मैं बड़े चौरस्ते से मुड़ा। वहाँ पर धड़ाधड़ कोका कोला खुल रही थी। वहाँ छोटे-छोटे समूह बन गये थे जिनका उद्देश्य कोका कोला था। मेरा उद्देश्य गणेश था लेकिन जब मैं उसके पास पहुँचा तो आलिंगन नहीं हुआ। मैं बहुत पहले से सोच रहा था कि हम बाजू फैलाकर बिलकुल भिड़ जायेंगे। शरीर में तपिश भी वैसी ही थी लेकिन ऐन वक्त पर आलिंगन नहीं हुआ। मैंने महसूस किया कि गणेश जो कि पेंडुलम की तरह

हमेशा रत होता था, थका हुआ है और निपोरता हुआ बड़े करुणाजनक तरीके से दया माँग रहा है। उसके घुटनों में तेज नहीं लगता था और पैर भैंस के घुटनों की तरह लग रहे थे। जवान आदमी के घुटनों जैसे नहीं।

गणेश के यहाँ से मैं किसी तरह निकला। कई वर्षों के बाद पहली झलक और पहला साक्षात्कार इतना मनहूस होगा, मैं नहीं सोचता था। मैं सदर पहुँचकर रेलिंग पर बैठ गया। काफी देर बैठा रहा। मुझे शक हो रहा था कि जरूर शहर पर कोई साया पड़ गया है और पट-परिवर्तन हो गया है। आने जानेवालों में से कुछ मुझे घूर भी लेते थे। यह चेहरा, कुछ-कुछ जैसे पहचाना लगता है, यह सोचते हुए और फिर वे दूर हो जाने के कारण दिमाग पर शायद जोर नहीं डाल पाते थे। रेलिंग पर बैठा हुआ मैं अपने बारे में बिलकुल नहीं सोच रहा था। मैं बिछुड़ा हुआ लग रहा था और सोच रहा था कि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय जहाँ से मैं घुसना शुरू करूँ। गणेश के पास से लौट कर मैं साथियों की फौज में से किसी के पास नहीं जाना चाहता था। शायद मैं डर गया था।

शहर में दिन खत्म हो रहा था। इतनी देर रेलिंग पर बैठा-बैठा मैं बिलकुल ही नहीं उलझा, सपाट बना रहा। एक भी चेहरा नहीं मिला। और न शहर की वे लंबी काली चंचल लड़कियाँ। दरअसल मैं गलत जगह पर बैठ कर उम्मीद कर रहा था। यहाँ तो छत्ते की तरह चिपचिपाती और गोश्त का चकला हिलाती देवियों का सिलसिला खत्म नहीं होगा। मैं रेलिंग से कूदा।

शहर में शांति मालूम पड़ती थी। जैसे वह एक जमाने से बिलकुल स्तब्ध चला जा रहा हो। क्या यह एक चालबाजी है? मैं पुल की तरफ बढ़ा। आश्रम पहुँचने का वही एकमात्र रास्ता है। शांति की चपेट बढ़ती जा रही थी। मैं अंदर से बेहद अशांत था। मैं अपनी अशांति को किसी दार्शनिक भाले से नहीं भेदना चाहता था। शांति किसी दुरभिसंधि के एक माकूल इस्तेमाल की तरह बहुत आराम के साथ चल रही थी। मेरे बगल से लोग जब गुजरते तो मुझे लगता वे मुझे धक्का देकर नाली में फेंक जाएँगे। मैं सड़क से हटकर चलने लगा। मैं पुल की तरफ जा रहा था।

न्यायालय की इमारत के बाहर धूल में एक व्यक्ति कुछ तलाश रहा था। मैं उसे काफी दूरी से देखता हुआ उसके पास तक पहुँच गया। उसकी चवन्नी गिर गयी थी। मैंने कई काड़ियाँ जलाईं और डब्बी खत्म हो गयी। वह निराश होकर कमर सीधी कर ही रहा था कि उसे चवन्नी चमक गयी। चवन्नी लेकर जब वह खड़ा हुआ तब उसे लगा कि सन्नाटा और अकेलापन है और उसकी चवन्नी खतरे से बाहर नहीं है। कृतज्ञता और

भय के बीच फँसा वह तेजी से खिसक गया। मुझे बात समझ में आ गयी, फिर अच्छा लगा और तब तक खड़ा रहा जब तक वह ओझल नहीं हो गया।

गणेश कैसे टूट-फूट गया है? उसे किसने घाट से लगा दिया। क्या यह उम्र है अथवा किन्हीं व्यक्तियों का फरेब? घर पर उसने बच्चे को इस तरह गोद में लिया हुआ था जैसे उसे कोई छीन रहा हो। थोड़ी देर बाद उसने कहा मुन्ना इनसे डरो मत, ये चाचा जी हैं, इनके पास जाओ। मुझको लगा था गणेश जान गया है कि कुछ लोग जरूर ऐसे हैं जिनसे डरना चाहिए।

गणेश का उपहास सब कर लेते हैं। वह क्लर्क है और पस्त हो गया है। अधिक-से-अधिक वह डाक्टर तथा खजाने के बीच दौड़ता होगा। उसके चेहरे पर मुझे एकदम से शांति की खरोंच दिखाई पड़ने लगी। फिर उसका चेहरा उस लंबी निकली और पड़ी हुई जीभ जैसा खत्म लगा जो गर्दन नाप लेने के बाद हो जाती है। गणेश के साथियों ने उसे यह कहकर दुत्कार दिया कि तुम समय का साथ न देने के कारण सड़ गये हो। जाओ, तुम बीवी बच्चों का साथ दो, हम सदर में घूमेंगे, पान खायेंगे और कोका कोला पियेंगे। और गणेश रह गया, अपने को चुपड़ नहीं सका।

मेरा आश्रम आने ही वाला था लेकिन मैंने उसकी परवाह नहीं की। गणेश का ध्यान ही प्रबल था। मुझे उस पर बार-बार दया आ रही थी। दया जैसे एक दरिया की तरह उमड़ पड़ी थी। गणेश के साथी मूर्ख मार्ग पर चल पड़े हैं, वे समझते हैं महात्मा गांधी मार्ग पर टहल रहे हैं। चादर के बाहर उनके पैर जो शान जता रहे हैं उन्हें भी शहर के अंतिम घाट पर गाड़ दिया जायेगा। शहर में सुदर्शन चक्र चल रहा है, यह मुझे घंटे भर चौरस्ते की रेलिंग पर बैठकर ही पता पड़ गया था। लेकिन यह समझ नहीं आता कि गणेश के साथी गणेश को अँधेरे में पाकर ताली बजाकर अलग कैसे हो गये?

मैं थकान अनुभव करने लगा। मैंने सोचा, जब खाट पर लेट जाऊँगा तब व्यापक रूप से कुछ विचार करूँगा। व्यापक रूप से विचार एक दुर्लभ आशा थी। मैं एक खुली जगह में लेटा। सियार नहीं बोल रहे थे। अब सैनिक बस्तियों का विस्तार दूर-दूर तक हो गया है इसलिए सियार कहाँ से बोलें। केवल आसमान था और पेड़ थे। बहुत-सी चीजों का सफाया हो गया है। घोड़ा पालनेवाले और ताँगा चलानेवालों का। भालू और बंदर नचानेवालों का और ठेलेवाले बिसातियों का। ये सब सौ फुट आगे के एक उजड़े कब्रिस्तान में रहते थे। अब कब्रों के ऊपर कालोनी है।

मुझे अपने शहर से इतना घातक लगाव क्यों है? मुझे लगा मैं व्यापक रूप से नहीं सोच पाऊँगा। मैं तो रोड़ों के साथ सोचता हूँ। फिर? फिर क्या। सच तो यह है कि मैं

अंत तक यहीं रहने की इच्छा रखता हूँ। मुझे अब आना जाना भी पसंद नहीं। संपर्कवाद की दुनिया का भंडा फूट रहा है।

चूँकि मैं खुले आसमान के नीचे आराम से लेटा था। इसलिए मुझे लगा कि सोचते हुए मैं थोड़ा भावावेश में आ गया हूँ। बिस्तरे पर लेटकर सोने से पहले सोच-विचार करने और किसी कारखाने में यंत्र चलाते हुए अथवा रिक्शा पर पैडल मारते हुए-हाँफते हुए सोचने में फर्क है। शहर के बारे में मेरा मामला कुछ ऐसा ही असंतुलित है। शहर, शहर, शहर, अनंत बार शहर की चर्चा से मेरे अलावा किसी का भी बौखला जाना या वीतराग हो जाना मुमकिन है लेकिन शहर के बारे में यह चर्चा किसी प्रकार से उर्दू गजल नहीं है। एक सीमा तक यह उसी तरह की स्थिति है जैसी सामंतों में अपनी हवेली और अपनी बंदूक के प्रति हुआ करती थी। लेकिन मेरा ख्याल था कि शहर के प्रति मेरी असीम लालसा को संसार की किसी भी विचारधारा की ठोकर से नहीं उड़ाया जा सकता।

मुझे आज से कुछ वर्ष पहले का जमाना याद है। तब मैं निजी पीड़ा के शौर्य में डूबा हुआ था। मैंने एक लात सामने की कुर्सी पर लगाई। घरवालों को इस प्रतीकात्मक तरीके से धमका दिया। उसके बाद मैं शिमला की शांत वादियों में अपने शौर्य की कुल्फी बनाता रहा और अंततः इस सूक्ष्मता पर पहुँचा जिसे मनुष्य का एकांत कहते हैं। इस अनुभव ने मुझे मात कर दिया। मैंने सार्वजनिकता का झंडा हटा दिया और केवल बाँस रहने दिया। मेरे एकांत अमृत का यह स्वादिष्ट लपटा जो मुझे बेहद आधुनिक लगता था, आश्चर्यजनक रूप से उस आध्यात्मिक धारणा के काफी करीब था जिसमें कहा जाता है, आदमी आया है अकेला, और जायेगा अकेला।

कुछ अच्छी बातें भी हुईं। निजी पीड़ा बिलकुल ही बेकार नहीं थी। लेकिन एक अर्से के बाद यह अनुभव हासिल हुआ कि केवल विरुद्ध होकर मैं अपनी कोई सेवा नहीं कर रहा था।

उस समय मैं उत्तर से पश्चिम चला गया। मैं समझता था कि यह मनुष्य का विस्तार है कि वह जहाँ पैदा हो, वहीं न मर जाए। इसे मैंने तब आर्थिक बात नहीं समझा। मैं झूठ को सच बनाने पर आमादा था। तब मैं बाहर से प्यार करते-करते घबरा उठा था। शहर मेरी दुनिया बनता जा रहा था। मेरा घर, मेरे दोस्तों का घर, मेरी प्रेमिका का घर, यहाँ सारे घर इकट्ठा हो गये थे। यहाँ की सड़कें यहाँ के अमरूद यहाँ की आकाश-रेखा और क्या-क्या नहीं। सब कुछ अच्छा था। इस अच्छे पर जकड़ तगड़ी होती जा रही थी। ऐसा डर था कि यह जकड़ एक दिन जंग से खदबदा जावेगी और कभी नहीं खुलेगी।

पीड़ा टपकती रही। निर्माण-प्रक्रिया चलती रही। मैंने बिस्तर पर करवट ली। अब हालत ऐसी है जैसे धम्म से काफी नीचे गिरकर सँभला हूँ और शुक्र मना रहा हूँ कि बिल्कुल बेकार नहीं हुए। कुछ दिन में ठीक हो जायेंगे।

उन दिनों जब मैं शहर से गया था आर-पार खुशी-ही-खुशी थी। बाहर जाने पर लोग विस्फारित होते थे। अन्य जगहें गैर होती हैं। कोई दुर्घटना हो जाय और अकस्मात घर आना हो तो दूरियों को लाँघने में ही सारा समय और धन खर्च हो जाये। फिर बच्चों की शादी-ब्याह, दूसरी भाषा, दूसरा खान-पान और अपरिचित समाज। लोग जितना कहते उतनी ही खुशी होती। यहाँ तक कि खुशी जाहिल हो गयी।

जब मैं नयी जगह में पहुँचा तो क्रांतिकारिता चालू थी और निजी हादसे का पुराना नशा पूरे दमखम से रूढ़ियों और मामूली लोगों पर हमला करता रहा।

एक बार रेल के सफर में कुछ लोग मिले और पता चला कि वे लोग मेरे ही शहर के रहनेवाले हैं। तो आप लोग सब वहीं के रहनेवाले हैं। मैं भी वहीं का रहने वाला हूँ। डाट के पुल के पास रहता हूँ। वहाँ की क्या बात। पूर्व जन्म का कोई पाप था जो हम इधर लुढ़क आये हैं। असलियत तो यह है जनाब कि अपने शहर की मिट्टी और यहाँ का पेड़ा एक बराबर है। पूरे रास्ते खूब वाहवाह होता रहा। तब पहली बार मुझे पता चला कि मेरी असलियत क्या है। उस जगह में जब भी कोई अपने शहर का व्यक्ति मिला हमेशा ऐसी खुशी हुई जैसे अँधेरे जंगल में भटकते हुए एक लालटेन मिल गयी हो।

जैसा कि मैंने पहले भी बताया मैं अपने शहर पर धम्म से गिरा। मेरी वापसी, गिरे हुए उस आदमी जैसी थी जो चुटीला होकर अपने उद्देश्य के कहीं आस-पास पड़ा हुआ था।

दूसरे दिन सिविल लाइन्स के मध्य में मुझे गणेश मिल गया। मैं चिंता में नहीं वरन् किसी छोटे से मनोरंजक इरादे में था। लेकिन गणेश से मिलते मानो मैं बिलकुल मनहूस हो गया। मैंने कई तरह से प्रयत्न किया लेकिन मनहूसी टस से मस नहीं हुई। यह एक कारुणिक बात थी कि मैं मान बैठा था कि गणेश अब हँस नहीं सकता, खुश नहीं हो सकता। मैं उससे इस तरह से मिला जैसे उसके किसी प्रिय की गमी हो गयी हो।

गणेश ने बताया कि वह इधर दवा लेने आया था। मैंने कहा चलो कॉफी पियें। उसने कहा, चलो मुझे तो तीन वर्ष हो गया कॉफी हाउस गये हुए। कॉफी पीने के बाद वह तब तक अपने दाहिने हाथ को कुरते की जेब पर रगड़ता रहा, जब तक कि मैंने पैसे नहीं दे दिये। फिर वह हँस पड़ा जो कि हँसी से अधिक एक कराह थी और कहा, 'चलें।' मैंने

कहा, 'हाँ।' उसने कहा, 'बात यह है कि मेरे पास दवा है। और इसलिए जल्दी है।' गणेश के जाने के बाद मैं परेशान हो गया। मैंने सोचा कि गणेश मुझे न याद आये, न दिखे। फिर भी मैं प्रसन्न नहीं हुआ। मैंने सोचा, मैं गणेश से बचूँगा। वह उधर से आयेगा तो मैं इधर से निकल जाऊँगा लेकिन मैं तब भी प्रसन्न नहीं हुआ। मैं निर्णय कर के भी मनहूस का मनहूस रहा।

मैं बाहर निकलने के बाद वापस फिर कॉफी हाउस पहुँचा और बैठ गया। तब से मैं ये समझिये कि वहीं बैठा हूँ। यहीं सतीश से मेरा पुनर्मिलन हुआ। सतीश मेरे बचपन का सबसे पहला साथी है और सबसे लंबा समय उसके साथ बीता है। लेकिन दो वजहों से मेरी उसकी खटक गयी। एक तो वह आयकर अधिकारी हो गया था और दूसरे अपनी पीड़ा के दिनों में जब मैं दुनिया से थोड़ा ऊपर उठ गया था, मैंने अकस्मात एक दिन उससे कह दिया था, 'तुमसे मेरी नहीं पटेगी। तुम अंडरवीयर छोड़ कर सब चीजें मुफ्त वसूलते हो। तुम घूसखोर हो, भ्रष्टाचारी हो। तुम जाओ।'

पुनर्मिलन के बाद सतीश हर रोज मेरी वजह से दो-चार मिनट को जरूर आता। वह मेरा उद्धार करना चाहता है। वह कहता, 'कहाँ सनीचर में फँसे हो। मुझे माफ करो। अब मैंने सब कुछ छोड़ दिया। घूस का पैसा फलता नहीं।'

सतीश जा चुका है। लेकिन रेलगाड़ी के चले जाने के बाद भी जैसे उसकी छुक-छुक बनी रही है उसी तरह सतीश अभी बना हुआ है। दिमाग में काटपीट मची है। तभी शोर का एक तेज रेला आया और मुझे अधिक बेचारगी के साथ महसूस हुआ कि अकेला हूँ। इस छोटी-सी कहवा पीने की जगह में जितने हैं सब धुरंधर हैं। सबके सब सहूलियत से आ गए हैं। सब अपने-अपने फन टेबुलों पर पटक रहे हैं। मैं अकेला हूँ नहीं तो अपना फन भी पटकता।

तो चलें बाहर नीम के दरख्त के नीचे बैठें या रेलिंग पर टिक जायें। या किसी पुष्पवाटिका में घूमें, गायें, गुनगुनायें अथवा किसी को पकड़कर उससे बकवास करें। परसों सोचा था व्यापक विचार करेंगे और दिमाग है कि सामनेवाले फव्वारे की तरह टूट रहा है। फव्वारा सुंदर लग रहा है। उसने सिविल लाइन्स में चार चाँद लगा दिये हैं। रिक्शेवाले पसीने से नहा लेने के बाद हवा से बदन पुँछ जाने की उम्मीद में उघारे बैठे हैं। भद्र और कोमल लोग रूमाल को नाक पर दबाकर रिक्शेवालों से बात कर रहे हैं।

उफ ये उमस, उफ ये उमस, कुछ हवाखोर बस यही गजल गा रहे हैं। उनके अंदर फव्वारों को छूने की तबियत उठती है पर कंटीले तारों और भीगने के डर से लाचार आगे बढ़ जाते हैं। 'कोक्स' के खुलने की आवाजें आ रही हैं। सोच रहा हूँ, इसी शहर पर

मतवाले थे। इसी शहर को चाटते फिरते थे। इसी शहर के लिए हर जगह से लौट आये। मैं पुराने रईसजादों की तरह इस शहर का बाशिंदा बनना चाहता था। मैं जब होता कॉफी हाउस में जाकर बैठ जाता। यह शहर की सबसे आसान जगह थी। यह एक झरोखा था जहाँ बैठकर कॉफी पियो और बाहरवालों का मुजरा करो। उन्हें उँगली दिखाओ। यहाँ बैठे हुए लगता कि हम दर्शक की तरह शहर की जिंदगी की नुमाइश देख रहे हैं।

बड़े चौरस्ते से सौ कदम बढ़ने पर दाहिनी तरफ एक तिमंजिला इमारत खिंच गयी थी। वह वास्तु कला का शहर में एक नया नमूना थी। उसमें लगे वातानुकूलित यंत्रों की वजह से बाहर भी कुछ ठंडक निकल आई थी। कुछ लोग इमारत को देख रहे थे। उनका कहना था शहर काफी सुंदर होता जा रहा है। जबकि पिछले बीस सालों में यहाँ वही खपरैल छाया रहा। अब जरूर कुछ अच्छी अमेरिकन पैटर्न की इमारतें बन गयी हैं।

एक सुंदर नौजवान कह रहा था, 'मैं तो पुराने शहर की तरफ जाता ही नहीं। वहाँ मेरा दम घुटता है। वहाँ भीड़-ही-भीड़ होती है और भीड़ में जीवन की उत्तेजना नष्ट हो जाती है।'

'चौक की बात छोड़ो, यहाँ सिविल लाइन्स में देखो डंडा चला-चला कर इतना काम हुआ है लेकिन शाम होते ही तुम देखो साली कोई गली ऐसी नहीं जहाँ बच्चे पाखाना नहीं करने बैठे हों। इस तरह से शहर नहीं बनता। बंबई में कोलाबा में तुम मजाल है कहीं पेशाब कर लो।'

'अंग्रेजों के समय में अच्छा था, जब सिविल लाइन्स में हिंदुस्तानी घुसने नहीं पाते थे। असली बात यह है कि इन लोगों को ज्यादा आजादी दो तो ये इतने असभ्य हैं कि बीच सड़क पर ही हगने लगें।'

बातें इससे भी अधिक मनोरंजक हो सकती थीं लेकिन मैं वापस हुआ। मुझे भूख लग रही थी तभी मुझे लगा कि एक जीप, बीच सड़क छोड़कर मेरे ऊपर चढ़ी आ रही है। हेड लाइट से मेरी आँखें चुँधिया गईं। मुझको लगा कि मार दिया गया पर कुचला नहीं गया। गाड़ी खड़ी करके उसका चलाने वाला जब बाहर आया, उतरा तो वह मोईत्रा था। थोड़ा गाली-गलौज हुआ। फिर मैंने कहा, 'कहो कहाँ से आ रहे हो, यह जीप कहाँ से कबाड़ ली।' मोईत्रा नशे में था। बोला, 'मर्डर करके आ रहा हूँ। फतेहपुर में एक को जीप से चाक कर दिया। बहुत दिन से परेशान कर रखा था, बेरी...ने।'

मोईत्रा को उसके साथी, ईसा मसीह का कुत्ता कहते थे। मैंने कहा, 'कुत्ते, तुम क्या मर्डर करोगे।' उसने पूछा, 'नशा करोगे, मेरे पास थोड़ी रम है।' मुझे उस पर भरोसा नहीं हो रहा था। न रम पर न हत्या पर। मुझे पशोपेश में देख कर जेब से निकाल उसने बची हुई रम फटाफट चढ़ा ली और बोतल में पास के नल से पानी भरने चला गया। गाड़ी में अपने उतना ही पानी डाला और स्टीयरिंग पर बैठ गया। गाड़ी स्टार्ट करतु हुए उसने कहा, 'तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है, शुद्ध घी (वह मुझे हमेशा शुद्ध घी कहता था।) इधर आओ।' उसने इसके बाद लंबा हाथ बढ़ाकर जीप के पिछले हिस्से से एक कुचला हुआ मुंड उठाया और वापस गिरा दिया। 'कल ईसा मसीह ने चाहा तो इसी महात्मा गांधी मार्ग पर मिलेंगे। उसके यह कहने के साथ-साथ जीप स्टेनली रोड पर मुड़ गयी।

मैं कुछ देर थरथराता रहा और फिर हिचकी बँध गयी। मैंने कभी हत्या नहीं देखी थी। मृत्यु एक दो बार देखी थी। मेरे होश गायब थे। फिर मैंने पास के नल पर सर लगा दिया। मैं हत्याकांड में शामिल व्यक्ति की तरह डर गया था और घबड़ाहट के बाद भी फूँक-फूँक कर चलने की सावधानी बरतता रहा।

मैं रिक्शा करके सीधा आश्रम पहुँचा और सर में तेल मलवा कर लेट गया। रात भर नींद नहीं आई। गणेश, मोईत्रा तथा सतीश के चेहरे विकराल रूप से नृत्य करते रहे। तीनों चेहरों में एक अजीब ताल था और वे पूरी रात में एक बार भी आपस में नहीं टकराये।

मैं अंतिम रूप से निराशा का अनुभव करने लगा। लगा चक्की के पाट में पिस जाऊँगा। शहर से अपने प्यार का मामला अस्त होने लगा। यही ऐसा समय होता है जब कोई अपना रास्ता बदलता है और उसके तर्क सीखता है।

आज अजीब बात है, लेटे-लेटे मैंने सोचा। सियार भी बोल रहे हैं, उल्लू भी बोल रहे हैं, कुत्ते भी बोल रहे हैं। मैं डर कर और नीचे हो गया। जैसे एक कब्र में लेट गया। लेटे-लेटे लगा कोई लिफ्ट नीचे पहुँच कर ऊपर लौट गयी है। चुप्पी, चारों तरफ अभूतपूर्व चुप्पी। सोचा कुछ पुकारूँ, शायद कोई कराह उठे। लेकिन पुकारा नहीं। डर लगा कहीं पुकारते ही गणेश का मनहूस चेहरा सामने न आ जाय या मोईत्रा की हत्यारी जीप आवाज न करने लगे।

धीरे-धीरे सुकून मिला। नीचे बड़ा पुरलुफ्त ख्वाब है। कोई नहीं बोलता, खुद ही बोलते जाओ, जितना बकना है जैसा बकना हो। मैं कभी कटी हुई गोजर की पूँछ की तरह छटपटाया था और ठंडा पड़ गया। कुछ समय सन्निपात अवस्था भी रही और अब धीरे-धीरे राह खुलती जा रही है। घाट की राह।

ज्यों-ज्यों सुबह करीब आती गयी पिछली शाम का खूँखारपन खत्म होता गया। लमहा-लमहा एक रमणीक सपने को तैयार होना था। मैंने सोचा अगर मैं दर्शक हूँ तो मुझे जल में कमल जैसा होना है। सारी तकलीफ यह है कि मैं, अपने को गणेश और मोईत्रा से जोड़ने की कोशिश कर रहा हूँ। जुड़ोगे तो भोगोगे। लोगों को पहचानने में व्यर्थ वक्त जाया न करो। केवल अपना काम करो।

शहर की सतह पर अगणित रश्मियाँ फूट रही हैं। एक से बचो तो दूसरी से फँसो। मान लिया दूसरी से भी बच गये और तीसरे से भी तो चौथी, पाँचवीं, छठवीं और इसी तरह सौ से कैसे बचोगे। इससे यह शिक्षा मिलती है कि बचने का प्रयत्न खत्म करो। उद्योग और वाणिज्य बड़े बहुरंगी उत्पादन पेश कर रहे हैं। उनकी मदहोशी को तिलिस्मी लखलखा भी नहीं उड़ा सकता। अच्छा-खासा साढ़े पाँच फुटा आदमी ऐसी नींद ले रहा है जैसे गर्भाशय में पिंड। इसलिए तुम भी मदहोश रहो। आलोचकों को भाड़ में जाने दो। उनकी खोपड़ी लजीज आलोचनाओं से लबालब भरी है। वे उसी में डूबें उतराएँ, व्यस्त रहें। अजीब जाति है इनकी। ये समय को चाल रहे हैं, लोगों को चाल रहे हैं, इतिहास को चाल रहे हैं, विद्वान हैं, चलनी बन गए हैं।

अब आप कल्पना करें कि जिस आदमी का दिमाग भटकता हुआ इस अवस्था पर पहुँचा हो, उसे रात के तीन बजे जब नींद आएगी तो वह कितनी गहरी और मस्त होगी।

मैं कुछ दिन बाहर नहीं निकला। मैं अधूरा कायाकल्प का हामी नहीं था। मोईत्रा से मुझे बचना था। वह महात्मा गांधी मार्ग, कॉफी हाउस और पेट्रोला का चक्कर मार रहा होगा। उसके बारे में अखबार में कुछ नहीं आया और इधर-उधर से भी कुछ भनक नहीं पड़ी। संभव है वह बच गया हो। लेकिन मुझे भी तो उससे बचना है।

आज मैं कई दिन बाद आश्रम से निकला। यद्यपि किसी को कुछ भी मतलब नहीं था और मेरा अंदरूनी परिवर्तन भी एक गुप्त रोग जैसा था, फिर मेरे साथ-साथ मेरा चोर भी चल रहा था। मुझे अपने समर्थन के लिए उदाहरणों का चुनाव करते रहना था। दो-तीन रात पहले मैंने कुछ उदाहरण चुने थे लेकिन अभी कुछ दिन यह सिलसिला चलाना था। नैतिक बल भी कुछ चीज है।

मैंने देखा कि हर व्यक्ति प्रसन्न-वदन है। हर आदमी खुश है। एक आदमी अंडे और गुब्बारे खरीद कर खुश है और एक व्यक्ति 'वीकली' खरीद कर। तीन-चार व्यक्ति, एक उग्र जुलूस के चले जाने के बाद भी बेहद खुश हैं। दरअसल वे काफी खिलखिला रहे हैं (यहाँ चूँकि मैं मनमाफिक उदाहरण चुन रहा हूँ इसलिए मैंने जुलूस के चेहरों की

तरफ ध्यान आकर्षित नहीं किया)। यहाँ तक कि वह व्यक्ति जो सड़क के बाजू पेशाब कर रहा था, खड़े होते ही प्रसन्न हो उठा है - इसलिए कि काम बिना बाधा के पूरा हो गया या कि किडनी ठीक काम कर रही है।

पूरी शाम मैं अपने पिछले उदास जीवन को धिक्कारता रहा और उदाहरण खोजता रहा। उदाहरणों की कमी नहीं थी।

मैंने एक मार्ग पकड़ा। यद्यपि मेरी मनहूसी पूरी तरह से गायब नहीं हुई पर वह काफी दब गयी। मैंने सोचा, चूँकि मुझमें जोखिम उठाने की संभावना दूर-दूर तक नदारत है इसलिए मुझे सतीश से कन्नी नहीं काटनी चाहिए। सतीश शहर का बड़ी पहुँचवाला मनुष्य था। इसी बीच मुझे यह रहस्य भी ज्ञात हुआ कि मैं बहुत से मामलों में हूबहू अपने पिता सरीखा निकल आया हूँ। हममें कई बातें आश्चर्यजनक रूप से एक थीं। शायद उम्र ने भेद को खोल दिया। यह एक मार थी और इस मार को खाकर मैंने कहा अब जैसा भी घटे लेकिन बागडोर का प्रयोग खत्म।

सतीश लगभग रोज ही मिलता था। मैं भी पुनर्मिलन के लिए तैयार बैठा था लेकिन इसके पहले मान-मनउव्वल की आवश्यकता थी। वह खींचे, मैं अड़ूँ, नहीं-नहीं और चलता चलूँ। यह सब जरूरी था। इस तरह से कुछ दिन पाखंड चला।

एक दिन मेरी सतीश से मामूली भिड़ंत हुई। नोक-झोंक हुआ लेकिन वह एक मिली-जुली कुश्ती के मानिंद था।

मैंने उससे कहा, 'क्या तुम रुक कर कभी नहीं सोचते?'

'क्या तुम्हें कभी यह ध्यान आया है कि शहर अपनी कब्र में बिदा ले रहा है? बगीचे, सड़कें और इमारतें अब एक भूत की तरह हिल रही हैं।' सतीश इस सवाल पर बेहद हँसा। मुझे भी अपनी बात मूर्खतापूर्ण लगी। मेरे अंदर अंदरूनी जोर नहीं था। मैं तो खुद, एक चुनचुना देनेवाली आभा की उम्मीद में तैयार बैठा था।

फिर भी उसने कुछ मेरी ही मुद्रा और भाषा में जवाब दिया - 'तुम पुराने वाशिंदों की बात कर रहे हो। क्या तुम्हें उनमें से परिपक्वता की सड़ाँध नहीं आ रही है! वे अपना हाथ उठा चुके हैं और अब दिन भर में सिर्फ कई हजार धड़धड़ाती साँसें लेते हैं।'

'छोड़ो, इन बातों को गोली मारो। मुझे तुम्हारी मनहूसी अकारण लगती है। यह सही है कि तुम विचारवान हो, और विचारवानों में आत्महत्या की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से

जोर मारती रहती है। मुझे इसमें भी कोई आपत्ति नहीं लेकिन थोड़ा दुनिया देखकर मरो तो ज्यादा अच्छा है।'

सतीश बहुत दिन से भरा हुआ था। मेरे मिजाज में शहर की जो छाया थी वह उस पर भी पिल पड़ा। मुझे सब कुछ बेहद अच्छा लग रहा था लेकिन मैंने मुंडी हिलाकर नापसंदी भी दिखाई।

उसने एक प्रश्न पूछा और कहा इसको आज ही हल करो।

प्रश्न था : तुम्हें मुसीबत घेर ले और तुम्हें रुपयों की जरूरत पड़ जाय तो शहर से तुम्हें कितनी मदद मिलेगी।

मैंने उससे कहा, 'बाहर आओ, यहाँ नहीं।' मुझे ताव भी आ गया था। हम बिल चुका कर बाहर आये।

मैंने उत्तर दिया, 'शर्म की बात है, तुम मेरी व्यक्तिगत स्थिति को ध्यान में रखकर प्रश्न कर रहे हो। फिर भी मैं केवल आर्थिक तरीके से नहीं सोच सकता। शहर केवल एक इमारत नहीं है। तुम्हारे पास बस पैसे की गर्मी है।

'डोंट बी सिली, जिस तरह एक टोकरी होती है, एक दरबा होता है या एक हौज होती है वैसे ही शहर होता है। यह निचोड़ है। लेकिन तुम्हें जब देखो तब इस शहर की खुजली होती रहती है। मेरे दोस्त, ईश्वर के लिए न तो गाने गुनगुनाने और बकबक की छूट पर जाओ और सड़कों, वृक्षों की कतारों और जाला लगी गॉथिक इमारतों पर न्यौछावर हो। यह शुद्ध दलदल है। अपने को बरबाद मत करो।'

'धक्का लगने पर शहर तुम्हें उदास करता है या प्रबल, कृपया इसको सोचो।' और इसके बाद माहिर तरीके से उसने मेरी एक खास नस पकड़ी। 'तुम्हें याद होगा, हालाँकि यह एक कठोर उदाहरण है, एक बार प्यार मुहब्बत की बाजी हार कर तुम इसी शहर से भगे थे। याद है न।'

इसके बाद सड़क इतनी अँधेरी थी कि हम बिना एक दूसरे का चेहरा देखे चल रहे थे। केवल चल रहे थे।

सतीश से पुनर्मिलन के बाद मैं आश्रम में कम रहता था। वहाँ कभी-कभी सोता था। सतीश ने कहा, 'मैं प्रयत्न करूँगा कि तुम्हें शेरों के क्लब का सदस्य बना सकूँ। उसमें

वकील, अमीर, डाक्टर, व्यवसायी, दलाल, क्लास वन सब तरह के लोग हैं लेकिन कोई भी बुद्धिजीवी नहीं है। अच्छा शगल रहेगा।'

मैं अभी तक उस क्लब का सदस्य नहीं बन सका हूँ। उस क्लब के लिए मैं अटपटा भी हूँ पर मेरी आकांक्षा जरूर बढ़ गयी है। यूँ सतीश की वजह से शेरों के क्लब के बहुत से सदस्यों से मेरी मुलाकात और बैठक हो गयी है।

इन्हीं लोगों के बीच मुझे पता चला कि शहर में सात मिलीमीटर के प्रोजेक्टर्स की बिलकुल कमी नहीं है। प्रोजेक्टर्स के खेल के बारे में मैंने खूब सुना था। अब मेरा दिल धड़कने लगा, शायद मैं आसपास पहुँच गया हूँ।

शेरों के समाज में मैं अपने को अनुभवहीन नहीं प्रदर्शित करता था। बराबरी देता था। सूचनाओं के मामले में मेरी पहुँच कमजोर नहीं थी। मैंने बिना जाने तीर छोड़ा, 'सुना है कि जस्टिस बोथरा के यहाँ हर शनिवार को शो होता है।'

लोगों को नयी सूचना पर गुदगुदी हुई। एक महाशय ने तो यहाँ तक कहा, 'हाँ आप ठीक फरमाते हैं मुझे भी भनक पड़ी थी।' सतीश नहीं था, उसकी अनुपस्थिति में मैं काफी चढ़ा रहता था, उसके सामने पोला अनुभव करता। मैंने कहा, 'दिल्ली, बंबई और कलकत्ते के बाद पता लगाया जाय तो यहीं का नंबर होगा।'

शनिवार का दिन, बड़ा सुस्त था। शाम को ही गणेश मिल गया। असगुन वहीं से शुरू हुआ। आज वह जैसे फुरसत में था। आज उसने साथ नहीं छोड़ा। 'आज कॉफी हाउस नहीं चलोगे', उसने कहा। शायद उसे कुछ एरियर्स मिले थे। इसलिए कॉफी हाउस चले आये। मैंने तो सोच लिया था कि आज का दिन कुर्बान करना ही पड़ेगा और फिर महीने भर की फुरसत मिल जायेगी गणेश से।

पीली-पीली रोशनी थी। काठ-सरीखा मैं बैठा था। बड़ी देर से न बदन में कहीं खुजली हुई न शरीर में मरोड़। तभी सतीश का आगमन हुआ। एक पल में उसने मुझे खोजा और एक रेले की तरह मेरी टेबुल पर आया। यूँ तो उसे मैं सतीश ही कहने और सोचने लगा हूँ लेकिन उस समय मैंने मन में सोचा, 'सतीश द लंबू।' पंद्रह वर्ष पहले हम सतीश को 'सतीश द लंबू' कहते थे।

'आओ तुम्हें फुर्ती से भर दूँ।' सतीश मेरे कान में फुसफुसा रहा था। 'मैंने डॉ. मंगलू को पटाया है। डाक्टर शेरोंवाले क्लब का सदस्य है। उसके गेस्ट हाउस में ब्लू फिल्म का

शो है। गेस्ट हाउस महात्मा गांधी मार्ग पर है। नौ नंबर पेट्रोल पंप के सामने। एक बार तुम उसमें धँस जाओगे तो तुम्हारा चान्स बराबर बना रहेगा।'

मेरे नखरे पर उसने चोट की। मैंने तुम्हें कहा था, 'आदमी को हर प्रकार का अनुभव करना चाहिए। सेक्स को गौण मत समझो। कम-से-कम इसे तीसरा स्थान मत दो।' सतीश अब तक खड़ा था।

'कॉफी मँगाओ,' सतीश ने इतमीनान से बैठते हुए कहा। मैं उसके अनुभव सूत्र की चपेट में तो काफी पहले आ गया था। और ऐसा भी नहीं कि मैं चाहता नहीं था। एक बार तो अनुभव हर चीज का होना चाहिए, यह आज की जिंदगी का ब्रह्म सूत्र है।

कॉफी पीते-पीते पता नहीं किस पल सतीश कुछ चिढ़ सा गया। उसे लगा मैं कुछ ढोंग कर रहा हूँ। 'चौबीस घंटे कविता कहानी करते-करते भी तुम लोग उकताते नहीं। अपने को शहर का बाप समझते हो। अभी तुम जानते ही क्या हो? चर्च के चारों तरफ घूमते हो। कुछ सुनसान बेजान सड़कों की जानकारी के अलावा तुम्हारे पास थोड़ी सी किताबें हैं। बस।'

कॉफी समाप्त करके उसने एक टेबुल के गिर्द बैठे लोगों के बारे में पूछा, 'क्या वे सब एस.एस.पी. के लोग हैं?' उसके प्रश्न से लगता था कि वह अब जायेगा। मैंने कहा, नहीं।

उसने कहा, 'सूरत, कपड़ों और अदाओं से तो समाजवादी लगते हैं।' और वह चलने को उठ खड़ा हुआ। इसके पहले कि अलविदा होती, सतीश ने पुनः एक बौद्धिक अदाकारी की। 'आदमी सबसे भिन्न है। इसको कभी मत भूलो। उसका लोक आश्चर्यों से भरा है। मन को अनुभवों के विराट में दौड़ने दो, भटकने दो।'

सात बजे हम गेस्ट हाउस में मिले। अंदर तैयारी हो रही थी। पता चला कि फिल्म का नाम है, 'लव गेम फ्राम कोपेनहेगन।' शेरोंवाले क्लब के बहुत से लोग वहाँ जुड़वाँ उपस्थित थे। सबसे अधिक उत्सुक और वाचाल अधेड़ लोग थे। पिता जैसे लोग भी आए थे। बड़ी जिंदादिली थी। जवान और अधेड़ का मिलन आश्चर्यजनक था। उनमें कभी-कभार संवाद भी हो जाते थे।

अंदर जब कि प्रोजेक्टर तैयार हो रहा था और दो-एक लोगों का इंतजार था उस गैप टाइम का अनुभव नवीन, अद्भुत और रोमांचक था। मेरी अवस्था यह थी कि मुझे मुल्क के भविष्य का अफसोस भी हो रहा था और यह प्रसन्नता भी कि अनुभव के

पुस्तकालय में कोई हैरतअंगेज पुस्तक आने वाली है। वहाँ जो बीवियाँ थीं, वे पुरलुफ्त मजाक कर करके अपने को तैयार कर रही थीं। हममें से कुछ बीच-बीच में सड़क पर से गुजरते अपने परिचितों को बदनसीब समझ कर हमला कर रहे थे। गेस्ट हाउस सड़क पर था। बस बीच में एक हेज और पतली लॉन थी पट्टी की। एक ने आवाज लगाई वो देखो रिक्शा पर 'मामा' को, कॉफी हाउस जा रहा है और लोग खिस्स से हँस पड़े। इसके बाद सुब्रतो जब अपनी बीवी को स्कूटर पर बैठाये गुजरा तो एक श्रीमती जी बोली, 'हाय शी इज गोइंग इन हर पिट फार द सेम बोर नाईट कोर्स' और हा-हा-हा-हा। उसकी साथिन जो किसी पुतली की तरह ठै-ठै के बोलती थी, कहने लगी, 'शी लुक्स ए केस ऑफ वन मैन हैंडलिंग' और हा-हा-हा-हा।

एक बार तो तबियत हुई पेशाब, सिगरेट या किसी और बहाने खिसक लूँ। लेकिन यह वास्तविक इच्छा नहीं थी। नंगे चित्र कैसे होते हैं, अनुभव का लोभ मारे डाल रहा था। बातूनी और समय बहार में पगी महिलाएँ बार-बार मेरी अविवाहित अवस्था पर दया चिपका रही थीं। श्रीमती नथानी सर्वाधिक चपल हैं। कहने लगीं, 'स्वामी, (काफी लोग मुझे स्वामी नाम से संबोधित करने लगे थे। लेकिन जब महिलाएँ स्वामी कहतीं तो चिढ़ नहीं होती थी) फिलहाल, आई कैन मैनेज माई आया।' इसके बाद वे पूरे समूह को बताने लगीं, 'अपने तकलीफ के दिनों में जै के लिए मैं उसी से कहती हूँ। जै को चाहिए रोज। बाबा मैं तो उससे आजिज आ गयी हूँ।' फिर वे मेरी तरफ खास तौर पर मुखातिब हुईं, 'स्वामी, आया इज ब्यूटीफूल टू।'

फन आधे घंटे में समाप्त हुआ। कुछ लोग पूरी तरह से समाप्त होने के पहले ही बीवियों को लेकर भागे। कुछ चीत्कार करने लगे थे क्योंकि कमरे में अंधकार था और महिलाएँ आपस में दर्दनाक चिकोटियों का आदान-प्रदान करती रहीं।

सतीश ने पूछा, 'कहो स्वामी कैसा रहा।'

मैंने कहा, 'हाँ, असमय बूढ़े हो जानेवालों के लिए उपयोगी है।'

'फिर वही तुर्रा,' सतीश बमकता हुआ बोला, 'कृतज्ञ होइये महाराज कृतज्ञ। क्या अद्भुत कैमरा आर्ट है और यौन क्रियाओं को कविता में बदल देनेवाली उन औरतों को धन्यवाद दीजिये स्वामी जी, जिन्हें आप केवल नंगी समझ रहे हैं।'

वहाँ से मैं सिविल लाइन्स के मुख्य बाजार में आ गया। बाजार में चहल-पहल थी और वह अधिक रंगीन लग रहा था। सुंदरियाँ चिक की तरह हवादार कपड़ों में सैर कर रही थीं। मैं भावुक होता जा रहा था। किधर जा रहा हूँ, सभ्यता किधर जा रही है। मैंने पाया

कि मैं खुश होने की जगह अनमना हूँ। मैंने 'फन' तबियत से देखा और उसके बाद भी उखड़ा हुआ हूँ। मैं रेलिंग पर बैठ गया। मुझे अपने व्यक्तित्व के इस चार सौ बीस की संगति नहीं मिल रही थी। मैं सचमुच परेशान हो गया।

यकायक मैंने इस बात पर गौर किया कि महात्मा गांधी मार्ग के इस हिस्से में बच्चे और बूढ़े नहीं है। क्या वे इस क्षेत्र से बहिष्कृत हैं? बच्चों का सिलसिला प्रसूति-गृह के बाहर जितना दिखाई देता है, यहाँ पहुँच कर वह गुम कैसे हो जाता है? बच्चे शायद दाइयों के पास चाकलेट की लालच में मुरझा रहे होंगे। और बूढ़े यहाँ नहीं आते। 'बूढ़ो, तुम पुल पर बैठो, बासी अखबार पढ़ो, चुरुट बीड़ी पियो और खखारो,' मैं बुदबुदाया।

इस तरह से अनुभव का एक महत्वपूर्ण दिन खत्म हुआ। दिन का अंत कितना ही भावुक क्यों न हो अगली सुबह पर उसका कोई भी निशान नहीं रहता। अनुभवी बन जाने के सूत्र ने जादू-मंत्र जैसा काम किया। देखते-देखते मैं अनुभव की पूरी चपेट में आ गया। शिकारी, पशुओं को जंगलों में जिस तरह घेर लेते हैं, उसी प्रकार मेरा जीवन अनुभव-चक्र के अंदर रह गया। अनुभव की उत्तेजना और माँग मेरे अंदर छूत की तरह फैलती गयी। बोतल से निकले जिन की तरह मुझसे हर समय कोई माँगता रहता, 'अनुभव लाओ, अनुभव लाओ।'

मैं भी माँग और पूर्ति के नियम का संतुलन करता रहा। चकलों की यात्रा, गाँजा मंडलियाँ, नदियों के किनारे मेले, खूँखार जंगल और भाँति-भाँति की शराबों का स्वाद, कुछ भी नहीं छूटा। जहाँ भभका लगता है, वहाँ बैठकर पीना। कभी-कभी जमुना पार करके अरैल पहुँचते और हमेशा इस रोमांचकारी अनुभति से युक्त रहते कि एक खोज है जो जारी है।

एक बार चकले में पचास रुपये खर्च करके जीवन के प्रति इतना आकर्षण बढ़ा कि मैं वहाँ की एक युवती से विवाह का प्रस्ताव करने लगा। सतीश बार-बार मेरी बाँह पकड़ कर मुझे बाहर ले जाता और मैं एक विक्षिप्त व्यक्ति की तरह दौड़ कर अंदर पहुँच जाता था। मैं उस युवती की माँ को बार-बार अपनी अच्छी आर्थिक स्थिति और जायदाद के बारे में बता रहा था और वह थी कि बस बेशर्मी से हँसे जा रही थी। मैंने उससे वादा किया कि मैं उस लड़की को बहुत प्यार से रखूँगा लेकिन मैंने देखा, वे लोग मेरी बात को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। और उनका सारा घर हँसने के लिए एक जगह इकट्ठा हो गया। जब लड़की की माँ ने देखा कि सतीश भी आसानी से मुझे ले जाने में सफल नहीं हो रहा है तो उसने तपाक से पान की एक भरपूर पीक मेरे कपड़ों पर डाल

दी और कहा, 'तुरंत निकलो, धंधा मत बिगाड़ो, नहीं तो अभी सब लोग तुम्हारे ऊपर पीक डालेंगे।'

सतीश मुझे बाहर लाया। नीचे लोग इकट्ठे होकर मटक रहे थे और रिमार्क कर रहे थे। एक होटल में बैठकर हमने कुछ समय काटा। सतीश भी इस घटना को लेकर खूब हँसा। जुनून नहीं था पर लड़की मेरे अंदर शादी के 'स्वागतम' की तरह बराबर जलती-बुझती रही।

सतीश तो चले गये। मैं अकेला अफसोस में जलता रहा। शर्ट पर पड़ी हुई पीक का अफसोस और पचास रुपये कठोर लोगों के पास पहुँच जाने का अफसोस। समीक्षा शुरू हो गयी थी। मैं रेल की पटरियाँ काटते हुए छोटे मार्ग से आश्रम की तरफ बढ़ रहा था। मनहूस धुँधलका था और शंटिंग करते इंजिनों की भाप फैली हुई थी। एक फर्लांग पर स्टेशन जल रहा था। तभी एक मानवीय दृश्य देखकर मैं द्रवित होने लगा। एक खलासी हाथ में लालटेन लिये हुए पास से गुजरा, सिग्नल के पास जाकर खड़ा हुआ और धीरे-धीरे उस पर चढ़ना शुरू किया। मैं वहीं रुक गया। उसकी नीली पतलून के चूतड़ पूरी तरह से गायब थे। ऊपर पहुँचकर वह सिग्नल के हरे लाल को साफ करके चमका रहा था। खलासी बूढ़ा था। उसे मैंने काम करके उतरते और फिर अँधेरे में खो जाते हुए देखा।

मैंने सोचा, उन पचास रुपयों में, जो हरामजादी वेश्या ले चुकी है, इस खलासी की पाँच पतलूनें बन जातीं। मैंने सोचा उसे बुलाऊँ और कुछ रुपये दूँ लेकिन फिर यह सोचकर कि आज तो एकमुश्त पचास रुपये निकल गये हैं, मैं चुपचाप चल दिया। लेकिन इस वक्त वेश्या-पुत्री का ध्यान नहीं था केवल खलासी को लेकर मन मलिन था।

तकरीबन रोज ही जब लौटता हूँ, मेरा मन किसी-न-किसी मानवीय स्थिति पर इसी तरह द्रवीभूत हो जाता है। इसी तरह किसी-न-किसी मानवीय स्थिति पर एक दर्द भरी डकार उठती है और डकार लेने के बाद मेरी तबियत आगामी कल के लिए दुरुस्त हो जाती है। उदाहरण के लिए मैं अगली सुबह की बात बताता हूँ। मैं तरोताजा और गुनगुनाते हुए दैनिक चर्या को पूरा करने लगा। आज शाम को मद्यपान का एक तरीके का कार्यक्रम था। इसमें कई ऐसे शरीफ लोग शामिल होनेवाले थे जिन्हे शराब पीते हुए देखना अपने में अनूठी कल्पना लगती थी। शाम तक का यह दिन बिलकुल बेदाग निकल गया, एक भी रोड़ा नहीं आया।

और शाम हो गयी। लोग बातें ज्यादा कर रहे थे। मैंने तो केवल पीने का ही सोचा था। शराब तेज थी और असरदार। आजकल मिलावट है या कुछ और बात, शराब न जाने

कैसी हो गयी है, पुराने दिनों जैसी हलचल नहीं होती। वह बस शरीर पर असर करती है, दिमाग पर नहीं। न प्रेमिका की याद आती है और न समाज की, न मुल्क की। सबसे ज्यादा खुशी इस बात की थी कि आज शराब पिछले दिनों जैसा काम कर रही थी। मैंने महसूस किया कि मेरी प्रेमिका शराब में पड़ी खौल रही है और मैंने महफिल में दो दर्जन से अधिक शेर सुना दिये। शेर न मालूम कहाँ से चींटों की तरह एक के बाद एक निकले चले आ रहे थे। महफिल में कोहराम मचा हुआ था। लोगों ने कहा आज का कार्यक्रम बहुत सफल रहा।

रात के बारह बजे के बाद का सन्नाटा था। मैं झूमता-झामता लौट रहा था। कुहराम सो चुका था। मेरे साथी मुझे आश्रम से तीन चार फर्लांग पर छोड़कर इधर-उधर हो गये थे। यहाँ से आश्रम तक मुझे सब पहचानते हैं। कुत्ते भी मुझे देखकर नहीं भोंकते। कुम्हारों का एक छोटा-सा मुहल्ला है जहाँ से गुजर कर मैं अपने आश्रम तक पहुँचता हूँ।

सड़क के किनारे, कोठरियों के बाहर सोनेवालों की कतारें थीं। एक कतार सोनेवालों की उस नल से भी निकली थी जिसमें सुबह पानी आने वाला था। ये अधिकांश बच्चे-बच्चियाँ थे। हाथ-गाड़ी पर दिन भर सामान बेचनेवालों ने अपनी गाड़ियों को रात में खाट बना लिया था। दूर तक फुटपाथ ऐसा लगता था, जैसे दुर्घटना के बाद अस्त-व्यस्त लाशें पड़ी हों।

मैं बीच सड़क पर बैठ गया। यह सब देखकर मुझ पर भीषण असर हुआ था। आज मेरा सीना यह सब देखकर भरभरा उठा। मैं रोज देखता था पर आज जैसे मेरा काबू नष्ट हो गया। मैंने पाया कि मैं सिसकने लगा हूँ और मेरी तबियत फूट-फूट कर रोने की हो रही है। मैं अपना नाम लेकर अपने को पुकार रहा था। 'थू है तुम्हारी जिंदगी को, तुम पत्थर हो गये हो। ये देखो, ये असली शहर है, असली हिंदुस्तान, इनके लिए तुम्हारा दिल हमेशा क्यों नहीं रोता है।' फिर मैंने खड़े होकर अपने गालों पर तमाचे मारने शुरू कर दिये। जब मैं तमाचे जड़ रहा था तभी सोये हुए व्यक्तियों में से एक पलकें मलता हुआ उठा और पूछने लगा, 'क्या बात है बाबूजी।' वह मोहन कुम्हार था। मैंने उससे कहा, 'कुछ नहीं, कुछ नहीं। सो जाओ मोहन, मेरे पेट में बड़े जोर से शूल उठा था, इसलिए बैठ गया था। अब ठीक है।'

इसके बाद मैं काफी सावधानी से आश्रम की तरफ चलने लगा।